P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4 (Part-1) May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

लोक के कपोल : राधाबल्लभ चतुर्वेदी

रामाश्रय सिंह
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी, उ0 प्र0, भारत

सारांश

राधा बल्लभ चतुर्वेदी जी लोकगीत, लोकगायकी, और लोक संस्कृति से परिचय कराते हैं, साथ ही भोजपुरी गीत, संगीत की शब्दावली और भाषा के गिरते स्तर पर भी प्रश्न खड़े कराते हैं। कहने में कोई संकोच नहीं है, आज गीत, संगीत में फूहड़ता के चलते सामाजिक मूल्यों में गिरावटें आई हैं। गीतों में शाब्दिक अभद्रता और दृश्यात्मक अश्लीलता प्रायः दिखाई देने लगे हैं। वाकई में लोक गायकी एक ऐसी गायकी है जिसके द्वारा शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ–साथ कन्या भ्रूण हत्या, दहेज, जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ का संदेश फैलाई जाती है। पर आज दुर्लभ है क्योंकि राधा बल्लभ चतुर्वेदी होना आज के कलाकारों में सूरज को दीप दिखाने जैसा है। पैसों की होड़ और प्रसिद्धि की तेजाब ने सबको पीछे छोड़ता जा रहा है। इसलिए मेरे शोध का सारांश यही कि लोक कला की आड़ में अश्लीलता को समाप्त कर राधा बल्लभ चतुर्वेदी जी जैसे कलाकार की जीवनी शालीनता की सुगंध हम सब के लिए बिखेरती रहे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर राधा बल्लभ चतुर्वेदी जैसे कलाकार आज भी प्रेरणा स्रोत हैं।

मुख्य शब्द : लोक, कपोल, फुर्सत, सकर्मक गीत, मस्तमौला, छुटकारा, पुकारती वैयक्तिक, नगाड़ा, हुनर।

प्रस्तावना

पंडित राधा बल्लभ चतुर्वेदी। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसकी साँस ही संगीत थी। राधा के प्रिय के नाम पर जिनका नाम हो। लोक के कपोलों पर ठहरी हुई आँसू की एक बूँद को याद करना जैसा है। उनकी याद नवेली दुल्हन की नथ में पिरोया हुआ नग हो, जबकि लोक संगीत का कोई निर्धारित व्याकरण नहीं है। इसका कोई ज्ञाता प्रवर्तक नहीं होता, नहीं कोई सचेतक, हर क्षेत्र समाज और रूप में व्यक्त लोक संगीत अलग–अलग समय में परिवर्तित होता और नवीन रूप धारण करता चलता है।

लोक संगीत फुर्सत के समय में गाये जाने वाला संगीत नहीं है, बल्कि यह काम के साथ गाए या बजाए जाने वाला संगीत होता है। जैसे खेतों में काम करने वाले कृषि मजदूरों का गीत, बोझा उठाने वाले श्रमिकों का गायन, मछुआरों का गायन आदि। यानी लोक संगीत सकर्मक गीत हैं। इस गीत में अनेक अपने विकास क्रम में स्थिर होकर शास्त्रीय संगीत हो जाते हैं। इसका नमूना गायन शैली में ''कजरी'' है। इस शोध लेख की योजना लोक के अप्रतिम गायक राधा बल्लभ चतुर्वेदी की संगीत के विविध प्रवृतियों को पाठकों के साथ जोड़ना है। जो भोजपुरी माटी से जुड़ाव रखने वाले ऐसे गुदड़ी के लाल थे, जिनके संगीत में देश प्रेम की भावना व भारतीय सभ्यता संस्कृति से लगाव था। सच में भारतीय संगीत के धरोहर हैं। इस प्रयास में हम कितने सफल होते है। इसका मूल्यांकन आप सभी समीक्षकों को करना है।

उपकल्पना

1. अपनी पूरी चमक–दमक और भव्यता के साथ बाजार बहुत क्रूर जगह ले चुका है। राधा बल्लम चतुर्वेदी जैसे कलाकार को दूसरे शब्दों मे कहें समाज के हर जलते हुए सवाल को बुझा देना चाहता है। ऐसा न हो इस बात की उपकल्पना है।
2. राजनीति जिस तरह हमारे समाज और भाषा को झूठा, अर्थहीन और आक्रामक हिंसक बना रहीं है, वह विचलित करने वाली है। किस तरह सहानुभूति, मद्दकारी प्रेम और करूणा जैसे मूल्यों को खत्म किया जा रहा है। दरअसल एक समाज और मनुष्य की आंतरिक मृत्यु का लक्षण है। राधा बल्लभ इसके प्रेरणा स्रोत है।

शोध पद्धति

1. संगीत की नकल करना एक बात है और संगीत जानना दूसरी बात है। शोध का विषय है। संगीत बहुत शक्तिशाली विधा है।

2. राधा बल्लभ चतुर्वेदी लोकोन्मुखी प्रगतिशील परम्परा का विकास किया। उनकी क्रान्तिधार्मिता है।
3. राधा बल्लभ चतुर्वेदी में एक अथक भाव और अद्भुत जिम्मेदारी का अभाव बहुत कहते नहीं थे। केन्द्रिय वाक्य है।
4. सुख–दुख, हर्ष विषाद, प्रेम–घृणा नेक नामी बदनामी इनकी सीमा कहां होती हैं। उनकी संगीत वहीं खड़ी होती है।

साहित्यावलोकन

राधा बल्लभ चतुर्वेदी का जन्म 12 जनवरी 1917 को मुरादाबाद में हुआ था। वे अपने पिता के छठी संतान थे। पिता और पुत्र में संगीत को लेकर विवाद था। पिता चाहते थे कि पढ़े–लिखे। पढ़ाने के चक्कर में राधा बल्लभ पर कोड़े बरसाते थे। पिता संगीत को औरताना चीज मानते थे। यों कहें पिता को संगीत से चिढ़ थी। चीढ़ के कारण ही अठ्ठारह वर्ष की आयु में घर छोड़कर लखनऊ भाग आये। पिता की निर्मम पिटाई और संगीत का प्रेम उन्हें जोखिम उठाने की ताकत दे रहे थे। राधा बल्लभ जी ने संगीत की अपनी यात्रा शास्त्रीय गायकी से शुरू की थी। पिता के मृत्यु के बाद घर की हालत ने उन्हें मुश्किलों में खड़ा होना सिखा दिया। दूसरी तरफ संगीत की महान परम्परा, तमन्ना उनकी आँखो में लपटों की तरह जलती रहती थी। अपने सपनों को पूरा करने के लिए जहाँ लड़को का हुड़दंग, नाली साफ करने वालो की कांय–कांय, मोटरों की पों–पों वहीं वे रियाज किया करते थे। उन्होंने विविध लोकगीतों को संग्रहीत कर एक पुस्तक की रचना की जिसका नाम ऊँची अटरिया रंग भरी'' इस पुस्तक में उन्होंने सरिया, सोहर, मुंडन, जनेऊ, विवाह, टोना, जेवनार विदाई, चकिया, पनघट, कजरी, झूला, चौमासा, चैती, सोहनी, झूमर, रसिया, देवी गीत, और धमार जैसे– अनेक प्रकार के लोकगीतों के स्वरों को लिपिबद्ध किया है।[1]

राधा बल्लभ की विपन्नता कायम रही। जबकि उनके संगीत को डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद से लेकर फकीरों तक ने सुना था। सचमुच सुगम संगीत तथा लोकसंगीत में वे प्रवीण थे। शास्त्रीय संगीत में पारगंत थे। शब्दों के भावानुसार शास्त्रीय संगीत देने में महारत हासिल था।

यद्यपि संगीत एक प्रयोग है। शास्त्र अपना महत्व रखता है। फिर भी जिसके मन में चैत मास हो, कोयल का कूक सुनकर मन मदमस्त हो जाता हो, चैती के बोल तो राधा बल्लभ के कंठ से सुनाई दे सकते हैं। लेकिन संगीत विशेषज्ञों का मानना है कि ध्रुवपद शैली कठिन है राधा बल्लभ इसी कठिन समझी जाने वाली गायकी के कलाकार थे। कारण कि ध्रुवपद लोक से जुड़ता है। जिसका अर्थ आम लोग होते हैं खेत खलिहानों में गाया जाने वाले कृषक संगीत नहीं। कहना कठिन है कि शास्त्रीय गायक थे? या लोक–गायक थे।? उनका मानना कि प्रत्येक क्षेत्र में नवीन एवं सृजनात्मक कार्य होना जरूरी है। कला के क्षेत्र में तो यह और भी जरूरी है। क्योंकि कला शब्द की उत्पत्ति कल धातु से हुई है। जिसका अर्थ है सुन्दरता के साथ कुछ नया करना। सुन्दरता और नयापन कलाकार के लिए अनिवार्य है। लेकिन हिन्दुस्तानी संगीत में कई संगीतज्ञों की यह धारणा है कि भारतीय संगीत पूर्व रूप से परम्परा में बधा हुआ है। जिसमें कोई बदलाव की गुंजाइस नहीं है। पुराने के प्रति ऐसा मोह हमारे संगीत के खास चरित्र को दर्शाता है। सत्य तो यह है कि शास्त्रीय संगीत को बदलने से न पहले रोक पाये हैं, और नहीं आगे रोक पायेंगे? क्योंकि मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह बन्धनों से मुक्ति की चाह में लगातार नये पन की ओर आकर्षित होता है। जो उसे नवीन प्रयोग करने के लिए प्रेरणा देता है। पं. विजय शंकर मिश्र के अनुसार यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो संगीत उसकी धड़कन।[2] परम्परा कभी भी ज्यों की त्यों अपनाई नहीं जाती। परम्परा जब मर जाती है तो रूढ़ि के रूप में भले ही ज्यों का त्यों अपनायी जा सकती है। राधा बल्लभ जी का भौतिक शरीर नहीं है। वे अपने पीछे संगीत के यादगार स्मारक छोड़कर चले गये। जिसको आज हम परम्परा के रूप में देख रहे हैं।

जाहिर है कि एक सच्चे संगीतज्ञ का गुण लकीर का फकीर बने रहना नहीं, बल्कि अपनी सृजनात्मकता का लगातार परिचय देते हुए उसमें सदैव नवीनता का समावेश करते रहने में है। सृजनात्मकता और नवीनता ही हमारे संगीत की जीवंतता का राज है। इसका ज्वलन्त उदाहरण ध्रुपद और ख्याल है। सचमुच राधा बल्लभ जी के बहाने कितना सुन्दर मौका है। स्मृतियों को टटोलने का, जिये और रचे का याद करने का और अपने भीतर उमड़ती कई सारी बातों और विचारों को लिखकर साझा कर सकने का। तो इसी क्रम में भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की एक झलक मिलती है। नृत्य शब्द की उत्पत्ति नट धातु से हुई है। नट धातु से ही नर शब्द भी बना है। यास्क मुनि ने नर शब्द का भाव स्पष्ट करते हुए लिखा है विभिन्न क्रिया कलापों के दौरान मनुष्य के हाथ–पाँव हिलते रहते है। अतः वे नर कहलाते हैं।[3] ''नट'' से संस्कृत में रूप बनाते समय ''रि'' का लोप होकर आ की मात्रा जुड़ जाती है। जिससे ना वर्ण निर्मित होता है। इसमें अट् धातु की संधि होने पर नाट्य शब्द बनता है। इसी प्रकार नाट्य शब्द का अर्थ हुआ नर्तन युक्त भ्रमण या नृत्य करते हुए घूमना फिरना। जिसका आशय गायन, वाक्ष, और नर्तन तीनों से होता है। क्योंकि नृत्य आनंद की चरम सीमा होती है। अति प्रसन्नता के क्षणों में जब मन मयूर नाच उठता है। तब इंसान के पैर भी थिरक उठते हैं। लेकिन इसी थिरकन को जब कुछ शास्त्रीय सीमाओं के अनुशासन में बाँध दिया जाता है। तो उसे शास्त्रीय नृत्य की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार कथक, भरतनाट्यम, ओडिशी, कुचिपुड़ी, कथकलि, मोहिनी, अट्टम, मणिपुरी और सत्रीय नृत्य।

इसी तरह राधा बल्लभ जी के बहाने समाज में शास्त्रीय गायक कुछ प्रयोग कर रहे हैं, और उनपर अलग अलग प्रतिक्रियायें देखने को मिल रही हैं। जैसे–उस्ताद रशिद खान, पं0 अजय पोहंकर, शुभा मद्गल, रेखा भारद्वाज और सारंगी वादक सुल्लतान खान भी ख्याल शैली में नयें प्रयोग कर रहे हैं। आज जरूरत इन प्रयोगों को सिरे से नकारने की बजाय इनका ध्यान पूर्वक अध्ययन करने में हैं ताकि इनमें से बेहतर और गुणवत्ता की दृष्टि से उच्चकोटि के प्रयोगों को मान्यता देकर संगीत को उन्नति और विकास की दिशा में आगे बढ़ाया

जा सके। कला और साहित्य के आत्म मुग्ध संसार का अपना ही ब्रह्ममांड है। पर रचनात्मकता किसी उन्माद में नहीं की जा सकती। उसका प्रयत्न इसको विस्तार उभारने की कोशिश में रहता है। इस मौके पर कुछ हिन्दी के लेखक जो विदेश में रह कर चित्रकला को बढ़ावा दिया है। उसमें कथा कार निर्मल वर्मा जो टाइम्स ऑफ इंडिया के लिये लिखते रहे, उनसे पहले उनके भाई रामकुमार वर्मा मूलतः चित्रकला के लिए वहाँ गये थे। अमृत राय संपादित हँस में प्रकाशित हुआ था।[4] कला के दर्शक और पाठक की हैसियत से कला को कुछ स्थापित और प्रचलित मापदण्डों के दायरे में नहीं बल्कि उससे बाहर रहकर समझने की कोशिश है। समकालीन समय में देखते हुए मुझे क्या महसूस होता या आम दर्शक क्या सोचता है या ये सोचना कलाकार की रचना के साथ कितना तारतम्य बैठा पाता है। मेरी छानबीन का विषय यही है। देश, समाज, राजनीति की तरह साहित्य, संस्कृति और कला की दुनिया में भी बड़े बदलाव आये हैं और नयापन आया है।, भाषा की तरह कथा में भी पारम्परिक औजारों के बदले नये–औजार और नई विचार दृष्टि आयी है। हम निरन्तर एक नये पन की ओर अग्रसर हैं समकालीन कला अपने फार्म, अपने विधान, अपने कटेंट और अपनी पूरी विषय वस्तु में एक लम्बी छलांग लगाकर एक नये धरातल पर आ गई है। आर्ट ऑन कैनवास से लेकर आर्ट आफ इंस्टालेशन, लाइव आर्ट, स्ट्रीटआर्ट, पब्लिक आर्ट, पापआर्ट, डिजीटल आर्ट, वीडियो आर्ट, सूचना प्राद्योगिक के नये मीडिया से जुड़े आदि एक नई हलचल और मॉमेंटम हम देख सकते हैं। इन सबके मूल में राधा बल्लभ चतुर्वेदी को देख सकते हैं।

आज अगर राधा बल्लभ चतुर्वेदी होते तो सचमुच कितना खुशनुमा पल होता। उनका अपनी शर्तों पर योजना का खाका बनाना और उन्हें अपनी तरह से अमली जामा पहनाना कितना बेहतरीन होता। अपने हर किये हुए और न किये काम के लिए खुद ही जिम्मेदारी लेने वाले चतुर्वेदी ने एक मस्तमौला कलाकार का जीवन जिया। राधा बल्लभ जी कठिनाइयों और वंचनाओं से कठिन संघर्ष किया था। इस तरह एक आत्मचेताव्यक्ति के रूप में खुद को सँवारने में, जीवन की पाठशाला ही उनकी प्राथमिक पूंजी थी। भारतीय संगीत के कलाकर्म को विश्व स्तरीय पहचान दिलाई। शब्द, रूप, ध्वनि, गंध, और, रंग, कैसे उनके जीवन से निकल गये बताना मुश्किल है। लेकिन ध्वनि के प्रति आग्रह से जुड़ा है। उनकी जन्मतिथि, पूरे परिवार का किस्सा। जीविकोपार्जन के लिए किए गये हर काम को उन्होंने सीखने का जरिया बनाया। वे लखनऊ शहर के लाल कुआँ मोहल्ले की एक गंदी और बदबूदार गली में दो कमरे। पर हर पल कुछ नया सीखने और करने की अदम्य इच्छा राधा बल्लभ को सदा बेचैन रखा। संगीत, ध्रुवपद खिलौनों पर डिजाइन करना और न जाने कैसे हुनर उन्हें दिलके करीब लगते थे। लोक के कपोल, निजी और सामाजिक रूप से सघन घटनाओं के विविध चरणों की अमिट छाप राधा बल्लभ के व्यक्तित्व पर रही। सत्य की तलाश उन्हें जीवन भर भटकाती रही। इसी ने उनके भीतर के कलाकार को भारतीय मिथकों, परम्पराओं, कथा, कहानियों और सांस्कृतियों विविधताओं से समृद्ध किया। परम्परा को आधुनिक कला भाषा में पिरोते हुए जब चतुर्वेदी ने अपने अनुभवों की दुनिया केनवास पर उकेरी तो भारतीय संगीत कला के क्षेत्र में एक नया दौर शुरू हुआ। यह बहस का विषय हो सकता है। लेकिन राधा बल्लभ ने अपने समय के जरूरी सवालों को भी अपने कलाकर्म के साथ हमेशा केन्द्र में रखा। यहीं कारण है कि लोक के कपोल पर गाने वाले राधा बल्लभ जी को देश की मिट्टी सदा पुकारती रही। संगीत कला से अपने आप में जीने का अपना तरीका इजाद किया जा सकता है। उसके जरिए खुद को तलाशा जा सकता है। जिससे जीवन में भय और मुक्ति से छुटकारा मिल सकता है। यह संदेश दूसरी तरफ एक नयी जिम्मेदारी डालती है कि आप अपने अनुशासन की एक प्रणाली है उसे तैयार करें, और उस फ्रेम वर्क के भीतर अपनी वैयक्तिक पहचान गढ़ें।[5] राधा बल्लभ चतुर्वेदी की जन्म शताब्दी एक ऐसा मौका मुहैया करा रही है। उनके जीवन और कर्म के बारे में विस्तार से बातें की जा सकती है। उनके संगीतों की प्रदर्शनीय के जरिए उनके कलाकर्म के विभिन्न चरणों को सामने लाया जा सकता है। उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर खुल कर बातें की जा सकती है। उनके संगीत हुनर को, फिल्मों को, लेखन को भी कला प्रेमियों तक पहुँचाने का अच्छा मौका है। अगर ऐसा हो पाये तो आधुनिक भारतीय कलाकर्म के विकास और उसके सामने मौजूद चुनौतियों पर चर्चा की भी एक सार्थक शुरूआत हो सकती है। लेकिन ऐसा हो पाएगा? इसकी उम्मीद नहीं दिखती। राधा बल्लभ को भारत का पिकासो मानने वाली कला विरादरी की तरफ से ऐसे संकेत नहीं मिल रहे हैं। और शेष के लिए चतुर्वेदी या तो आस्तित्व नहीं रखते या फिर धार्मिक भावनाओं को कभी आहत न करने वाले नहीं रहे। अपने पेशे के प्रति कभी कमजोर न पड़ने वाली प्रतिबद्धता और अपने लोगों के हितों की रक्षा के लिए दृढ़ता ही वह चीज थी, जिसको जब–जब यह लगने लगा था कि वह अंत हो गये हैं उन्हें बचाया। इस संदर्भ में हमें कवि कीट्स के उस कथन को याद रखना चाहिए– ''क्या आपको नजर नहीं आता कि प्रज्ञा का आत्मा में परिष्कार करने के लिए पीड़ाओं और परेशानियों का संसार कितना जरूरी है''।[6] राधा बल्लभ चतुर्वेदी से बेहतर कौन समझ सकता हैं। कि किन दर्दों और परेशानियों से एक कलाकार गुजरता, है तभी वह लोक के कपोल की आत्मिकता से जुड़ता है।

राधा बल्लभ चतुर्वेदी इस बात की खुद ताकीद करते हैं कि संगीत की दुनिया में कुछ अपवादों को छोड़कर संगीतकारों ने जो उनके पूर्ववर्ती हासिल कर चुके हैं, उससे आगे देखने की कोशिश ही नहीं की। हमें प्रयोग की जरूरत है। 'प्रयोग'' जो काम करने के दायरे का विस्तार करें। प्रयोग जो नई शैली के आगमन के संकेत के हों, इन सबसे ऊपर प्रयोग इसलिए जो इस माध्यम को सामाजिक परिवर्तन के हथियार के रूप में और कारगर बनाएँ। इनकी लोक संगीत की रक्षा के लिए योगदान शानदार और उत्प्रेरक रहा। इन्होंने ऐसी ऊर्जा प्रदान कर दी कि वह कई वर्षो तक विभिन्न भारतीय संगीतों में निरन्तर महत्वपूर्ण रहेगा। इसके अलावा वे एक ऐसे सर्वभारतीय संगीतज्ञ माने जाने लगे जिसका दृष्टिकोण

महत्वा कांक्षाएं और सरोकार प्रश्नाकुलता और अनुवेषण के उस घोषणा–पत्र को प्रतिध्वनित करने से कभी नहीं चूकता जिससे नया सिनेमा पैदा हुआ। इससे ही जुड़ी एक अद्‌भुत बात सिनेमा थियेटर कामगार वर्ग के मनोविश्लेषणात्मक क्लीनिक होते हैं। इस क्लीनिक का यथार्थ रूप चतुर्वेदी जी थे। इनके क्लीनिक में इतिहास, कला, मिथक, थियेटर, तकनीक, मंदिर और तमाम तरह की आस्थाएँ मिलकर एक मेक हो जाती हैं। संदेश देते हैं कि साधन और सिद्धि को एक रूप समझो। साधनाकाल में साधन में ही मन–प्राण अर्पण कर कार्य करो। क्योंकि उसकी चरम सीमा का नाम ही सिद्धि है। जब तुम कर्म करो, तब अन्य किसी बात का विचार मत करो। उस समय के लिये उसमें अपना सारा तन–मन लगा दो। जीवन की किसी भी अवस्था में कर्मफल में बिना आसक्ति रखे यदि कर्तव्य उचित रूप से किया जाये तो उससे हमें परमपद की प्राप्ति होती है।[7] ये सब बातें राधा बल्लभ जी की संगीत को आधार बनाकर हम में प्रेरणा की लौ जगाती रही है। ये सारे गुण यदि किसी में देवयोग से मिल जाते हैं। दरअसल राधा बल्लभ कोई यों नहीं बन जाता, बल्कि अंहकार रहित होकर अपनी सारी कलाकारी को भगवती के चरणों में रखनी पड़ती है। ज्यादा घूम–घूमकर सुनने की विनम्रता होनी चाहिए। मुझे तो ऐसा लगता है उनका सहज, सरल, सरस, उपयोगी एव सांस्कृतिक वैचारिक ही उन्हें इस मुकाम पर ले गई। क्योंकि उनके संगीत में लोकजीवन की अनुगूंज है। भारतीय लोक अर्थात् एक ऐसा संसार जिसमें जड़ और चेतन दोनों शामिल होते हैं। यानी सामान्य जन जिनके बिना संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसा कि लोक माने हमारे अंतर्मन को समझने और वाणी देने में हमारे साथ–साथ चलने वाली अनुभूतियों से भरा एक ऐसा अपनापन, जो बगैर किसी शोर या दावे के हमारे लिए प्राणवायु का काम करता रहता है।[(8)] यानी लोक को अपने सुरों से मुखर करने वाले असाधारण पुरूष राधा बल्लभ।

अध्ययन का उद्‌देश्य

राधा–बल्लभ चतुर्वेदी जी के विषय में लिखने का मूल उद्‌देश्य भूमण्लीयकरण, आपा धापी के दौर में आज के गायन पर तकनीक बुरी तरह से हाबी हो गयी है। और गाने भी बहुत चलताऊ और अश्लील से ग्रस्त हैं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में राधा–बल्लभ चतुर्वेदी जैसे कलाकार लोक के कपोल पर खड़े होकर आज भी प्रासंगिक हैं।

असल में जिस भूमण्डलीकरण आपा धापी के दौर में हम रह रहे हैं कला को इतनी तेजी से देखा और कसा जा रहा है कि कला के वास्तविक मूल्य और कलाकार की बुनियादी अभिलाषा पर गौर करने की फुर्सत भी मानों नहीं रह गयी है। हम कला को जैसे गटक लेना चाहते हैं। पानी की तरह। यह न सिर्फ कला की किसी कृति के साथ बल्कि उसे रचने वाले कलाकार के साथ भी नाइंसाफी है। आज किसी नामचीन या उदीयमान या संघर्षरत कलाकार की सबसे बड़ी इच्छा क्या होगी?

निष्कर्ष

सारंतः राधा बल्लभ जी सच्चे संगीत भक्त थे। उनकी सक्रियता, लोक, गायन, शास्त्रीय गायन की थी। दुःख है कि कोई ईष्यालु गायक ने सिंदुर खिलाकर असीम संगीतज्ञ की दुनिया सीमित कर दी। आवाज खो गई। फिर भी योग साधना, अनवरत रियाज और प्रबल इच्छा शक्ति इनकी जागीर थी। कहना न होगा जिन लोगों में अदम्य जुझारूपन होता हैं, वे रास्ते बना ही लेते हैं। समरथ को नहीं दोष गुसाई। 10 जून 1974 को भौतिक शरीर छोड़ कर चले गये, मेरी समझ से तो चले नहीं गये बल्कि ''लोक के कपोल'' पर संगीत के यादगार स्मारक छोड़ गये। उनको जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन सच है कि स्वयं लोकगीतों को उनसे बहुत कुछ प्राप्त हुआ है। जिसमें सम्पूर्ण भारत की लोकसंगीत समाहित है। है– अन्त में अपनी बात बालकवि बैरागी से समाप्त करूँगा–

जहाँ तक सुख की बात शास्त्रीय संगीत, कविता और कलाओं के साथ–साथ हुनर और श्रम में मन लगाने से गुणीजनों को प्राप्त होता है। सनातन अभावों और दुःखों में पलते भारत के ग्रामीण लोगों में तमाम अपसंस्कृति के बावजूद लोक संगीत, लोक नाट्य और लोक गीतों के रूप में आज भी आत्मिक सुख का सामान उपलब्ध है। तो क्या वैभव और ऐश्वर्य की खोज की मसीनों की नाँव कसने की जरूरत के मुकाबले साधारण जन के भूख, गरीबी, बीमारी और अभावग्रस्त जीवन को सरल और सम्मान, स्वस्थ और सुखी बनाने की जरूरत ज्यादा औचित्य पूर्ण नहीं हैं? समता और समानता की संस्कृति। सच में राधा बल्लभ की जिस शास्त्रीय संगीत के लिए जाने जाते पहचाने जाते रहे हैं वह खुशबू तो हमेशा के लिए विदा हो गयी है।

अंत में –

जबकि नगाड़ा (संगीत का यंत्र है) बजही गया है शरहद पर शैतान का तो नक्शे पर से नाम मिटा दो पापी पाकिस्तान का। नगाड़ा में देश प्रेम छिपा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

लोक के अप्रतिम गायक राधा बल्लभ चतुर्वेदी साहित्य अमृत जनवरी 2019 पृ 20–21

संगीत की गायन शैलियों में सृजनात्मकता–गवीश आजकल जनवरी 2019 पृ0 25

भरतीय शास्त्रीय संगीत में नृत्यों की एक झलक–रक्षा सिंह आजकल जनवरी 2019 पृ 21–22

भूगोल और समृतियों की परिधियाँ–पंकजविष्ट समयान्तर जनवरी 2019 पृ0 97

आधुनिक भारतीय जीवन का चितेरा–इरफान–समयान्तर जनवरी 2019 पृ 111

सर्व भारतीय निर्देशक –विद्यार्थी चटर्जी श्रद्धांजलि– समयान्तर जनवरी 2019 पृ0 115

कर्त्तव्य क्या है– स्वामी विवेका नंद– साहित्य अमृत फरवरी 2019 पृ 9

आलेख–नवनीत मिश्र– साहित्य अमृत 2019 पृ0 20 लोक के अप्रतिम गायक राधा बल्लभ चतुर्वेदी